(खण्ड–आ)

स्वर वाद्य

सितार / सरोद / वायलिन / दिलरूबा–इसराज / बांसुरी / गिटार

भारत के विभिन्न वाद्यों तथा वादकों पर जारी कुछ डाक टिकिट

अध्याय 7

अ. परिभाषाएं
ब. भारत में प्रचलित संगीत पद्धतियाँ

अ. परिभाषाएं

वर्ण

गान क्रियोच्यते वर्णः स चतुर्धा निरूपितः।
स्थयारोहावरोही व संचारीत्यथ लक्षणम्।।

–अभिनव राग मंजरी

अर्थात् गाने की क्रिया को वर्ण कहते है। संगीत में स्वरों की किसी भी प्रत्यक्ष क्रिया के प्रकारों को वर्ण कहा जा सकता है। वर्ण चार प्रकार के हाते है।

1. **स्थाई वर्ण :** जब एक ही स्वर को बार–बार प्रयुक्त किया जाए तो वह क्रिया स्थाई वर्ण कहलाती है। चाहे एक स्वर को कितनी ही बार प्रयुक्त किया जाए। जैसे–प प प प प, अथवा स स स स स स अथवा ग ग ग
2. **आरोही वर्ण :** स्वरों का आरोहात्मक प्रयोग आरोही वर्ण कहलाता है। यह वर्ण एक से अधिक कितने ही स्वरों का हो सकता है। यह भी आवश्यक नहीं कि उस वर्ण में प्रयुक्त सभी स्वर सप्तक के क्रम में ही हो (अर्थात् दो स्वरों के बीच का कोई स्वर वर्जित भी हो सकता है।) जैसे–म प ध नी अथवा रे ग म प ध नी सां अथवा रे म प नी
3. **अवरोही वर्ण :** स्वरों का उत्तरोत्तर नीचे उतरना अर्थात् अवरोहात्मक प्रयोग अवरोही वर्ण कहलाता है। यह वर्ण भी एक से अधिक कितने ही स्वरों का हो सकता है। यह भी आवश्यक नहीं कि उस वर्ण में प्रयुक्त सभी स्वर सप्तक के क्रम में ही हो (अर्थात् दो स्वरों के बीव का कोई स्वर वर्जित भी हो सकता है।) जैसे–म ग रे सा अथवा प रे स अथवा रे स
4. **संचारी वर्ण :** स्थाई वर्ण, आरोही वर्ण और अवरोही वर्ण में से किन्ही दो या तीनों के मिश्रण से बना वर्ण संचारी वर्ण कहलाता है। जैसे–सा रे ग रे सा, अथवा रे रे रे रे म प ध सां अथवा सा रे ग ग ग रे ग म

स्वरों की सभी क्रियाएं इन्हीं वर्णों के अनतर्गत आ जाती है। क्योंकि हम जब भी गाते या बजाते है तो या तो हम एक ही स्वर को दोहराते है या स्वरों को आरोही क्रम में प्रयुक्त करते है या अवरोही क्रम में साथ ही इन तीनों का मिश्रण कर स्वरों को बजाते या गाते है।

अलंकार

''विशिष्टवर्णसंदर्भमलंकार प्रचक्षते'' –सगीत रत्नाकार

अर्थात् कुछ नियमित वर्ण–समुदायों को अलंकार कहा जाता है।

स्वरों के एक निश्चित क्रम को अपनाकर उसका आरोह–अवरोह करने की क्रिया संगीत में अलंकार कहलाती है। इसे ''पलटा'' भी कहा जाता है। अलंकार एक संस्कृत शब्द है। इसका अर्थ है–आभूषण। जिस प्रकार आभूषण किसी व्यक्ति की सुंदरता को बढ़ाते है, उसी प्रकार संगीत में भी अलंकारों के अभ्यास से गायक का गला और वादक का हाथ तैयार होते है। कलाकार के लिए अलंकार का उतना ही महत्त्व है जितना किसी पहलवान के लिए प्रतिदिन किये जाने वाले व्यायाम का। संगीत के क्षेत्र में अलंकार के दो प्रयोजन हैं –

1. विद्यार्थियों के गले अथवा हाथ की तैयारी करवाना तथा उनकी क्षमता बढ़ाना तथा स्वर ताल का ज्ञान करवाना।

2. गायन अथवा वादन की क्रिया को इन अलंकारों के प्रयोग से सुंदर तथा भावयुक्त बनाना।

उदाहरण के लिए एक अलंकार इस प्रकार होगा –

आरोह– सा रे ग, रे ग म, ग म प, म प ध प ध नी, ध नी सां

अवरोह– सां नी ध, नी ध प, ध प म, प म ग, म ग रे, ग रे सा

इस प्रकार अनेक भिन्न–भिन्न स्वर समुदायों को लेकर भिन्न–भिन्न अलंकार बनाए जा सकते हैं।

आरोह–अवरोह

आरोह शब्द का अर्थ है–ऊपर चढ़ना। संगीत की भाषा में आरोह का अर्थ है नीचे स्वर से ऊँचे स्वर की ओर जाना। अर्थात् नाद की तारता के अनुसार बढ़ते क्रम में गाना या बजाना। जैसा कि हम जानते है कि किसी भी सप्तक में सा से रे ऊँचा स्वर है रे से ग ऊँचा स्वर है ग से म ऊँचा है इसी प्रकार म से प, प से ध और ध से नी ऊँचा स्वर है। गायन अथवा वादन में किसी नीचे स्वर से ऊँचे स्वर की ओर जाना आरोह कहलाता है। उदाहरण के लिए सा रे ग अथवा प ध नी सां ये स्वर समुदाय आरोह की श्रेणी में आता है। या इसी प्रकार किसी नीचे सप्तक के किसी भी स्वर से अगर ऊपर के सप्तक के किसी स्वर पर जाएंगे तो यह आरोह कहलाएगा। जैसे नी़ रे ग यहां नी मन्द्र सप्तक का है तथा रे व ग मध्य सप्तक के है।

ठीक इसके विपरीत अवरोह का शाब्दिक अर्थ है– नीचे उतरना। अर्थात् नाद की तारता के अनुसार घटते क्रम में गाना या बजाना। जैसा कि हम जानते है किसी भी सप्तक में नी से ध नीचा स्वर है ध से प नीचा स्वर है प से म नीचा है इसी प्रकार म से ग, ग से रे और रे से सा नीचा स्वर है। गायन अथवा वादन में किसी ऊँचे स्वर से नीचे स्वर की ओर जाना अवरोह कहलाता है। उदाहरण के लिए नी ध प म ग अथवा म ग रे सा ये स्वर समुदाय अवरोह की श्रेणी में आते है। या इस प्रकार किसी ऊँचे सप्तक के किसी भी स्वर से अगर नीचे के सप्तक के किसी स्वर पर जाऐंगे तो वह अवरोह कहलाएगा। जैसे गं रें नी ध प यहां ग व रे तार सप्तक के है तथा नी ध प मध्य सप्तक के है।

किसी भी राग के लक्षणों की दृष्टि से आरोह –अवरोह का बहुत महत्त्व है। क्योंकि प्रत्येक राग का आरोह–अवरोह निश्चित होता है। अर्थात राग के आरोह अथवा अवरोह में कौन सा स्वर किस प्रकार प्रयुक्त होता है या नहीं होता यह बात किसी भी राग के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। जैसे राग मालकोंस में आरोह तथा अवरोह दोनों में ऋषभ और पंचम वर्जित है। या राग भीमपलासी में आरोह में ऋषभ व धैवत वर्जित है परन्तु अवरोह में प्रयुक्त किये जाते है।

पकड़

स्वरों का वह छोटा समूह जिससे कोई राग पहचाना जा सकें, उस राग विशेष की पकड़ कहलाता है। सामान्य बोलचाल की भाषा में कहें तो इसका अर्थ वह स्वर समूह जिससे कोई राग पकड़ में आ जाए या पहचान में आ जाए। जैसे राग यमन की पकड़ है– नी़ रे ग रे सा, प मे ग रे सा या राग केदार की पकड़ है सा म, म प ध प म, रे सा। इसका अर्थ यह हुआ कि ये स्वर समुदाय सुनते ही हम तुरंत पहचान जाते है कि यह राग यमन या केदार है। पकड़ को कभी–कभी राग का मुख्य अंग, या मुख्य स्वर संगति या मुख्य स्वर स्वरूप भी कहा जाता है।

जोड़ आलाप

वर्तमान प्रचलित वादन पद्धति में आलाप दो प्रकार से किया जाता है। पहले बिना किसी लय के स्वतंत्र आलाप तथा उसके बाद लयबद्ध किन्तु ताल विहीन आलाप। यह लयबद्ध परंतु किसी भी ताल से विमुक्त आलाप ही जोड़ आलाप कहलाता है। लयमुक्त आलाप के बाद धीरे–धीरे जोड़ आलाप की लय बढ़ाई जाती है। और इसका समापन झाले के साथ किया जता है। जोड़ आलाप करते समय कुशल वादक तंत्रकारी के सभी अंगो यथा मींड, गमक, खटका, कृन्तन आदि का भरपूर उपयोग कर अपनी प्रस्तुति को सुंदर बनाते है।

तोड़ा

गायन में स्वरों को द्रुत लय में गाने को तान कहा जाता है। इसी प्रकार तंत्री वाद्यों में गत के साथ दुगुन चौगुन या और अधिक लय में स्वरों को बजाने को तोड़ा कहा जाता है। तोड़ो के द्वारा ही कोई प्रस्तुति आकर्षक बनती है। गत का विस्तार तोड़ों के माध्यम से ही

होता है। क्योंकि गत के स्थाई और अंतरा ही होते है। यदि केवल गत ही बजाई जाए तो एक या दो मिनट में प्रस्तुति समाप्त हो जाएगी। प्रस्तुति को अधिक देर तक बजाने के लिए तोड़े सहायक है।

झाला

बाज एवं चिकारी के तारों का छंदबद्ध और लययुक्त वादन ही झाला कहलाता है। सामान्यतया झाला द्रुत गत के बाद लय को बढ़ाकर शुरू किया जाता है। वर्तमान में झाले का जो सर्वमान्य प्रकार प्रचलित है उसमें बाज के तार पर ''दा'' से एक प्रहार और फिर चिकारी के तार पर ''रा'' के द्वारा तीन प्रहार किये जाते है। इस प्रकार बाज और चिकारी के तारों पर इस प्रकार लय और छंद के अनेक आकर्षक और चमत्कारिक संयोजनों से झाला और भी प्रभावी बन जाता है। कुछ कलाकार आलाप जोड़ के बाद गत से पहले भी झाला प्रस्तुत करते है। परन्तु यह झाला ''उलट झाला'' कहलाता है। क्योंकि इसमें पहले चिकारी के तार पर एक प्रहार ''रा'' से किया जाता है और फिर बाज के तार पर तीन प्रहार ''दा'' से किये जाते है। यह वाद्य संगीत में प्रस्तुत की जाने वाली सबसे लोकप्रिय चीजों में से एक है क्योंकि झालें के समय लय तेज़ होती है और यह उत्तरोत्तर और तेज़ होती जाती है। इसलिए यह जन सामान्य को भी जल्दी से प्रभावित करता है। सितार अथवा सरोद के अतिरिक्त अन्य तंत्री वाद्यों में भी उस वाद्य विशेष की वादन तकनीक के हिसाब से झाला बजाया जाता है।

कृन्तन

जब एक बार के प्रहार से एक से अधिक स्वर बजाए जाएं तो वह क्रिया ''कृन्तन कहलाती'' है। जब कोई स्वर इस प्रकार से बजाया जाए कि एक ही प्रहार में पहले उस स्वर के बाद का स्वर (बजाए जा रहे राग के अनुसार) फिर मुख्य स्वर, फिर उससे पहले का स्वर (बजाए जा रहे राग के अनुसार) और मुख्य स्वर बज जाएं तो यह प्रक्रिया ''कृन्तन'' कहलाती है। उदाहरण के लिए मान लीजिए हमें सा बजाना है तो हम शीघ्रता से ''रेसानिसा'' बजाएंगे। इसे बजाने के लिए बाएं हाथ की मध्यमा रे के पर्दे पर रखकर प्रहार किया जाएगा और मध्यमा को झटके से उठाकर तर्जनी को सा पर लाना होगा और तत्काल उसे खिसका कर नी पर और फिर तुरंत सा पर लाना होगा। यह पूरी प्रक्रिया अत्यंत शीघ्रता से केवल एक ही प्रहार के साथ होगी। इसे दर्शाने के लिए जिस मुख्य स्वर को बजाना है उसे कोष्ठक में लिखते हैं। जैसे– (सा)

जमजमा

जमजमा बाएं हाथ की तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों की सहायता से बजाया जाता है यदि हमें सा बजाना है तो तर्जनी को सा पर तथा मध्यमा को रे पर रखेंगे और दा से प्रहार करेगे और झटके के साथ मध्यमा को रे से हटा लेंगे और तर्जनी को सा पर ही रहने देगें। इस प्रक्रिया से हमें एक ही प्रहार से रेसा ये दो स्वर सुनाई पड़ेंगे। पं. रविशंकर ने अपनी पुस्तक My music my life में लिखा है कि मध्यमा और तर्जनी के सहारे शीघ्रता से रेसा बजाने को जमजमा कहते हैं। उनके अनुसार रेसा रेसा रेसा इस प्रकार तीन बार भी बजाया जा सकता है। कई अन्य विद्धानों ने भी दो या तीन या चार बार इस प्रकार दो स्वरों को बजाने का उल्लेख किया है। परन्तु किसी ने भी यह स्पष्ट नहीं किया कि इस प्रक्रिया में प्रहार कितनी बार किया जाना है। संगीत विशारद में जमजमा की परिभाषा इस प्रकार दी है– सितार में जब दो स्वरों को एक के बाद एक जल्दी–जल्दी इस प्रकार बजाया जाए कि पहले स्वर पर तो मिजराब से प्रहार किया जाए और दूसरे स्वर को बिना मिजराव केवल बायें हाथ की मध्यमा से बजाया जाए तो यह प्रक्रिया जमजमा कहलाती है। जैसे

सारे सारे रेग रेग

दाS दाS दाS दाS

मींड

एक स्वर से दूसरे स्वर पर बिना आवाज़ खण्डित हुए दोनों स्वरों के बीच की समस्त श्रुतियों को छूते हुए जाने की क्रिया मींड कहलाती है। सितार सुरबहार इत्यादि वाद्य यंत्रों में मींड बजाने हेतु किसी स्वर पर बायां हाथ रखकर दाहिने हाथ से प्रहार किया जाता है तथा बाएं हाथ से तार को पर्दे के बाहर की ओर जितने स्वर की मींड लेनी हो उसके अनुसार वांछित दूरी तक खींचा जाता है। इस क्रिया से हम एक ही स्वर पर दो तीन चार या पांच स्वरों को उत्पन्न कर सकते है। यह क्रिया नाद के उस गुण पर आधारित है जिसके अनुसार यदि कम्पित पदार्थ की मोटाई और लम्बाई अपरिवर्तित रहे और उस पदार्थ पर डाले गए तनाव या खिंचाव को बढ़ा दिया जाए तो नाद

की तीव्रता या तारता बढ़ जाती है मींड दो प्रकार की होती है–अनुलोम मींड और विलोम मींड

अनुलोम मींड किसी स्वर पर प्रहार कर तार को वांछित स्वर तक बाहर की ओर खींचकर ऊँचे स्वर को बजाने की क्रिया अनुलोम कहलाती है।

विलोम मींड तार को पहले वांछित ऊँचे स्वर तक खींच कर फिर तार पर प्रहार कर उसे वापस उसी परदे स्थान तक लाकर अवरोह क्रम में स्वर उत्पन्न करना विलोम मींड कहलाता है।

दुर्लभचित्र

बांए से– उ. आशिक अली, उ. इनायत खां, उ. इमदाद खां, उ. वाहिद खां, उ. सखावतखां

ब. भारत में प्रचलित संगीत पद्धतियां

भारत में प्रमुख रूप से दो संगीत पद्धतियां प्रचलित हैं। पहली उत्तरी या हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति तथा दूसरी दक्षिणी या कर्नाटक पद्धति। जैसा कि नाम से ही विदित है, उत्तर भारतीय पद्धति समूचे उत्तर भारत में प्रचलित है। यह पद्धति पंजाब हिमाचल प्रदेश उत्तर प्रदेश मध्यप्रदेश राजस्थान गुजरात बंगाल बिहार झारखंड छत्तीसगढ महाराष्ट्र आदि क्षेत्रों में प्रचलित है। दक्षिणी संगीत पद्धति कर्नाटक आंध्र प्रदेश तमिलनाडु केरल आदि दक्षिणी क्षेत्रों में प्रचलित है।

प्रारंभ में ये दोनो भिन्न पद्धतियां नहीं थी बल्कि एक ही पद्धति पूरे भारत में प्रचलित थी। मुस्लिम आक्रमण के प्रभाव से भारत की संस्कृति में बहुत से परिवर्तन होने शुरू हो गए। चूंकि मुस्लिम साम्राज्य का प्रभाव ज्यादातर उत्तरी भारत में ही रहा, इसलिए हमारे संगीत में मुस्लिम संगीत का प्रभाव भी केवल उत्तर भारत में ही पडा। संगीत मकरंद नामक ग्रंथ में लिखा है कि आठवीं सदी में दोनो पद्धतियों में अन्तर आना आरंभ हो गया था। 12वीं सदी तक आते आते दोनों पद्धतियां एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हो चुकीं थी। यद्यपि दोनों पद्धतियों का मूल आधार एक ही है समय के साथ साथ हुए परिवर्तनों के कारण दोनों में भिन्नताएं आ गई। इन दोनों पद्धतियों में मुख्य विभिन्नताएं निम्न हैं–

1. **भाषा–** उत्तर भारतीय या हिन्दुस्तानी संगीत में गीतों की भाषा अधिकतर ब्रजभाषा है। स्थानीयता के चलते कुछ गीत पंजाबी मराठी हिन्दी आदि में भी मिलते हैं। वहीं दूसरी ओर दक्षिणी पद्धति में गीत की भाषा कन्नड, तेलुगू और तमिल होती है। संस्कृत भाषा के गीत दोनों पद्धतियों में ही कम मात्रा में पाए जाते हैं।
2. रागों के नाम दोनों पद्धतियों में भिन्न हैं। जैसे

उत्तरी राग	दक्षिणी राग
बिलावल	धीर शंकराभरणं
भूपाली	मोहनम
तोडी	शुभ पंतुवराली
आसावरी	मुखारी
बागेश्री	श्री रंजनी
सोहनी	हंसानदी
भैरव	मायामालव

इसके अलावा कुछ रागों के नाम दोनो पद्धतियों में समान हैं परंतु उनके स्वर भिन्न हैं। कुछ राग ऐसे भी हैं जो दक्षिणी पद्धति के राग हैं परंतु पिछले 6–7 दशकों में उत्तर भारतीय परिधि में मान्यता प्राप्त कर चुके हैं। जैसे हंसध्वनि, मधुवंती वाचश्पति आदि।

3. **ताल–** दक्षिणी संगीत में 7 प्रमुख तालें है एवं 5 जातियां हैं। इस प्रकार कुल 7 x 5 = 35 तालें हो जाती हैं। इन तालों में थोड़ा सा परिवर्तन करने से अन्य तालें बन जाती हैं। उत्तरी संगीत में तालों की संख्या अनगिनत हो सकती है। उत्तर भारतीय संगीत में जहॉ ताली और खाली होते हैं वही दक्षिणी पद्धति मे खाली नहीं होता।
4. **राग वर्गीकरण–** उत्तरी संगीत पद्धति में समय समय पर भिन्न भिन्न राग वर्गीकरण पद्धतियां प्रचलन में रही है। राग–रागिनी पद्धति, दशविध राग–वर्गीकरण, रागांग राग पद्धति आदि प्रचलित रहे हैं। और वर्तमान में उत्तरी संगीत पद्धति मे थाट राग वर्गीकरण प्रचलित है। इसमें 10 थाट प्रचलित हैं। दक्षिणी संगीत पद्धति मे मेल राग वर्गीकरण प्रचलित है। मेलों की संख्या समय–समय पर कम या ज्यादा होती रही है। वर्तमान में 19 मेल प्रचलित हैं।
5. **गायन शैलियां–** उत्तरी संगीत पद्धति प्रमुख रूप से खयाल आधारित है। इसके अन्य मुख्य गीत प्रकार हैं ठुमरी, दादरा, टप्पा, तराना, धुपद धमार इत्यादि। जबकि दक्षिणी पद्धति मे कृति, पदम्, तिल्लाना, आदि प्रमुख गीत प्रकार है।

6. **वादन शैलियां**– उत्तरी संगीत पद्धति में अधिकतर गत ही प्रचलित है। इसके अलावा गायकी अंग के वादन में खयाल या ठुमरी अंग का वादन भी प्रचलित है। जबकि दक्षिणी पद्धति मे तत्त्व ओक और अनुगत शैलियां हैं।

7. **स्वर**– उत्तरी संगीत पद्धति और दक्षिणी पद्धति के स्वरों की संख्या तो 12 ही है परंतु इनके नामों में भिन्नता पाई जाती है। दक्षिणी पद्धति में कोमल स्वर नहीं होता है। पहले शुद्ध स्वर आता है फिर उसका विकृत रूप। विकृत स्वरों के नाम श्रुतिसंख्या के आधार पर होते हैं।

उत्तरी स्वर	दक्षिणी स्वर
स	स
कोमल रे	शुद्ध रे
शुद्ध रे	शुद्ध ग या चतुःश्रुति रे
कोमल ग	साधारण ग या षटश्रुति रे
शुद्ध ग	अंतर ग
शुद्ध म	शुद्ध म
तीव्र म	प्रति म
प	प
कोमल ध	शुद्ध ध
शुद्ध ध	शुद्ध नी या चतुःश्रुति ध
कोमल नी	कैशिक नी या षटश्रुति ध
शुद्ध नी	काकली नी

दोनों पद्धतियों में कुछ मूलभूत समानताएं हैं। वे इस प्रकार हैं–

? दोनों पद्धतियों में सप्तक में कुल 22 श्रुतियां मानी गई हैं।

? दोनों में ही सप्तक में स्वरों की संख्या 12 मानी गई है।

? दोनों में ही राग के 10 लक्षण बताए गए हैं।

? दोनों पद्धतियों में राग की जातियों का प्रचलन है।

? आलाप तान आदि दोनों पद्धतियों में ही प्रचलित हैं।

? नाट्य शास्त्र एवं संगीत रत्नाकर दोनों पद्धतियों के आधार ग्रंथ माने जाते हैं।

? ताल वाद्यों का प्रयोग दोनों पद्धतियों में होता है।

? गायन की कई शैलियां दोनों पद्धतियों में ही प्रचलित हैं जो एक दूसरे से मिलती जुलती हैं।

मुख्य बिन्दु

? गाने या बजाने की कोई भी क्रिया वर्ण कहलाती है। वर्ण चार प्रकार के होते हैं। स्थाई वर्ण, आरोही वर्ण, अवरोही वर्ण और संचारी वर्ण

? स्वरों के एक निश्चित क्रम को अपनाकर उसका आरोह–अवरोह करने की क्रिया संगीत में अलंकार कहलाती है।

? एक स्वर से दूसरे स्वर पर बिना आवाज़ खण्डित हुए दोनों स्वरों के बीच की समस्त श्रुतियों को छूते हुए जाने की क्रिया मींड कहलाती है।

? उत्तरी संगीत पद्धति प्रमुख रूप से खयाल आधारित है। इसके अन्य मुख्य गीत प्रकार हैं ठुमरी, दादरा, टप्पा, तराना, धुपद धमार

इत्यादि हैं। जबकि दक्षिणी पद्धति मे कृति, पदम, तिल्लाना, आदि प्रमुख गीत प्रकार है।

? उत्तरी संगीत पद्धति और दक्षिणी पद्धति के स्वरों की संख्या तो 12 ही है परंतु इनके नामों में भिन्नता पाई जाती है। दक्षिणी पद्धति में कोमल स्वर नहीं होता है। पहले शुद्ध स्वर आता है फिर उसका विकृत रूप। विकृत स्वरों के नाम श्रुतिसंख्या के आधार पर होते हैं।

? सप्तक में कुल 22 श्रुतियां होती हैं। सा म प की 4–4 रे ध की 3–3 तथा ग नी की 2–2।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. षड़ज ग्राम में श्रुतियों का क्रम होता है–

   (अ) 4, 3, 2, 4, 4,, 3, 2 (ब) 4, 3, 2, 4, 3, 4, 2

   (स) 4, 2, 3, 4, 4, 3, 2 (द) 4, 3, 2, 4, 4, 2, 3

2. बिलावल राग के समान स्वरों का दक्षिणी राग है–

   (अ) मुखारी (ब) मोहनम (स) हंसानदी (द) धीर शंकराभरण

3. ग म रे सा यह स्वर समुदाय किस प्रकार का वर्ण है–

   (अ) आरोही (ब) अवरोही (स) स्थाई (द) संचारी

उत्तरमाला– (1) अ (2) द (3) द

प्रश्न–

1. वर्ण कितने प्रकार के होते हैं? नाम लिखिए।
2. अलंकार किसे कहते हैं?
3. आरोह–अवरोह की परिभाषा लिखिए।
4. पकड़ किसे कहते हैं? पाठ्यक्रम के रागों की पकड़ लिखिए
5. आलाप को समझाइए।
6. भारत में कौन–कौन सी संगीत पद्धतियां मुख्य रूप से प्रचलित हैं।
7. उत्तर भारत और दक्षिण भारत की संगीत पद्धतियों के स्वरों में क्या अंतर है।

अभ्यास कार्य

1. सा रे ग रे सा इस स्वर समुदाय को आधार मान कर अलंकार बनाइये।
2. किसी वाद्य वादन की रिकार्डिग को सुनकर उसमें आलाप विलंबित गत द्रुत गत झाला मींड, कण इत्यादि को पहचानने का अभ्यास कीजिए।
3. दक्षिण भारतीय पद्धति के कलाकारों के बारे में जानकारी हासिल कीजिए।